भारतीय साहित्य और कुटुंब

डॉ० अनिल शर्मा
गणेशपुर, रुड़की (हरिद्वार)

'साहित्य' समाज की चेतना में साँस लेता है। यह समाज का वह परिधान है, जो जनता के जीवन के सुख–दुःख, हर्ष–विषाद, आकर्षण–विकर्षण के ताने–बाने से बुना जाता है। उसमें विशाल मानव–जाति की आत्मा का स्पंदन ध्वनित होता है। साहित्य मानव के जीवन की व्याख्या करता है और उसके जीवन को लेकर ही वह जीवित है, इसलिए वह पूर्णतः मानव–केन्द्रित है। साहित्य मानव की अनुभूतियों, भावनाओं और कलाओं का साकार रूप है और मानव सामाजिक प्राणी है। सामाजिक समस्याओं, विचारों तथा भावनाओं का जहाँ वह सृष्टा होता है, वहीं वह उनसे स्वयं भी प्रभावित होता है। इसी प्रभाव का मुखर रूप 'साहित्य' है। इसीलिए विद्वानों ने साहित्य को समाज का दर्पण कहा है।

साहित्य मानव के सामाजिक संबंधों को और भी दृढ़ बनाता है, क्योंकि उसमें संपूर्ण मानव–जाति का हित सम्मिलित रहता है। समाज और साहित्य का संबंध साहित्य के उदयकाल से चला आ रहा है। कवि वास्तव में समाज की अवस्था, वातावरण, धर्म–कर्म, रीति–नीति तथा सामाजिक शिष्टाचार एवं लोक–व्यवहार से ही अपने काव्य के उपकरण चुनता है और उनका प्रतिपादन अपने आदर्शों के अनुरूप करता है।

भारतीय धर्म और संस्कृति अनादिकाल से उदारवादी और सहिष्णुतामूलक रही है। हमने कभी भी स्वार्थ को प्रमुखता नहीं दी है। यही कारण है कि जब महर्षि वेदव्यास ने अष्टादश पुराणों की रचना पूर्ण की तो सार रूप में उन्होंने लिखा–

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्यवचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।

इसका सीधा सा अर्थ यह है कि हम अनादिकाल से मानव–मानव के बीच पारस्परिक स्नेह सम्बन्ध और आत्मीयता का भाव लेकर चले हैं, जिसका परिणाम यह हुआ है कि भारतीय दर्शन के चिन्तकों ने गर्व के साथ उद्घोष किया है–

अयं निजः परोवेतिगणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

यदि पाश्चात्य दृष्टिकोण से देखा जाये तो वहाँ के चिन्तक भारत की दृष्टि का अनुसरण करते हुए जब कहते हैं– "World is a family", तब उसमें 'कुटुम्ब' का भाव कदापि नहीं आ पाता क्योंकि "Family" का अर्थ प्रत्येक शब्दकोश में 'परिवार' होता है। अर्थात् पति–पत्नी और उनके बच्चे ही "Family" माने जाते हैं। 'कुटुम्ब' स्वयं में ऐसा शब्द है जो आत्मीय सामूहिकता का बोध कराता है। अर्थात् 'कुटुम्ब' में दादा–दादी, नाना–नानी, ताऊ–ताई, चाचा–चाची, फूफा–बुआ, मौसा–मौसी, भाई–भाभी, जीजा–बहन आदि–आदि सभी आ जाते हैं। इसीलिए हम गर्व के साथ परिवार को सीमित न मानकर 'कुटुम्ब' ही कहते आये हैं।

किसी भी देश का साहित्य वहाँ की संस्कृति का दर्पण होता है। भारतीय साहित्य में सर्वत्र हमारी संस्कृति की यही सामूहिकता और परोपकारी मनोवृत्ति मिलती है। यदि संस्कृत साहित्य की ओर दृष्टिपात करें तो महर्षि वाल्मीकि द्वारा प्रणीत 'रामायण' और महर्षि वेदव्यास प्रणीत 'महाभारत' मूलतः कुटुम्ब पर आधारित महाकाव्य ही हैं। 'रामायण' तो आदर्श कुटुम्ब की भारतीय अवधारणा का

निर्मल दर्पण ही कहा गया है जबकि 'महाभारत' में 'कुटुम्ब' स्वार्थ और परमार्थ के बीच झूलती हुई ऐसी अवधारणा के रूप में आया है जहाँ पाण्डवों के रूप में न्याय और कौरवों के रूप में हठधर्मिता तथा अन्याय के बीच द्वन्द की कथा कही गई है। अर्थात् 'रामायण' और 'रामचरितमानस' आदर्श कुटुम्ब की कथा है तो 'महाभारत' कुटुम्ब के विघटन की कथा है।

रामकथा को वाल्मीकि से लेकर महाकवि तुलसी और आधुनिक काल में मैथिलीशरण गुप्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला और नरेश मेहता जैसे अनेक कालजयी रचनाकारों ने जब अपनी काव्याभिव्यक्ति का माध्यम बनाया तो निश्चय ही 'आदर्श कुटुम्ब' की अवधारणा इन सभी रचनाकारों का मूल चिन्तन बनी है। आधुनिक काल में जब महाकवि मैथिलीशरण गुप्त 'साकेत' में मर्यादा पुरुषोत्तम राम के आदर्श रूप को चित्रित करते हैं तो उनके समक्ष 'आत्मवत्सर्वभूतेषु' का वेदवाक्य रहता है और वे राम से कहलाते हैं–

सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।
मैं आया उनके लिये जो कि तापित हैं,
जो दीनहीन बलहीन और शापित हैं।।

इन पंक्तियों में क्या महाकवि मैथिलीशरण गुप्त भारतीय संस्कृति की उदारवादी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा को ही वाणी नहीं दे रहे हैं। 'साकेत' में ही जनकनन्दिनी और रामप्रिया सीता के माध्यम से मैथिलीशरण गुप्त नारी के जिस रूप का चित्रण करते हैं, वह रूप महिमामयी गृहिणी का रूप है–

मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।
औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ,
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ।
मुझको मेरा भाग्य यहाँ ले आया,
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।।

आदिकवि वाल्मीकि ने अपनी 'रामायण' में एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था या यूँ कहिये कि 'एक आदर्श कुटुम्ब' की व्यवस्था का चित्रण करके, अपने दृष्टिकोण के अनुसार, समाज के विभिन्न पहलुओं की विवेचना करते हुए यह स्पष्ट किया है कि मानव–समाज किस पथ का अनुसरण करते हुए सन्तोष और सुख का अनुभव कर सकता है। तुलसी ने भी अपने समय की सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर, रामराज्य और राम–परिवार को मानव–समाज के सम्मुख आदर्श रूप में प्रस्तुत किया।

रामकथा के माध्यम से हिन्दी साहित्य में तो निरन्तर व्यापक उदारवादी चेतना की अभिव्यक्ति कवियों ने की ही है, उधर अन्य भारतीय भाषाओं में भी रामकथा इतनी श्रद्धा और सम्मान के साथ ग्रहण की गई है कि हम गर्व के साथ कह सकते हैं कि अयोध्या के महाराज दशरथ के पुत्रों राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न की यह अमरगाथा भारतीय कुटुम्ब की आदर्श काव्यगाथा बन गई है।

दूसरी ओर 'महाभारत' में परस्पर सत्ता–संघर्ष एवं स्वार्थपरता के कारण कुटुम्ब की मर्यादा तार–तार हुई दिखाई पड़ती है। वरिष्ठ जनों का अनावश्यक मौन और अन्याय का पक्षधर होने के कारण कुटुम्ब के पतन की वह कहानी शुरु होती है जिसका अन्त सर्वनाश ही है। वास्तव में

पुस्तकालय
राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रूड़की

मानवीय एवं नैतिक मूल्यों के पतन, स्वार्थपरता, हठधर्मिता एवं अन्याय से भरी वर्तमान परिस्थितियों में 'महाभारत' की कथा हमारी आँखे खोलने के लिए एक उत्कृष्ट नमूना है।

जब हिन्दी के कथा साहित्य पर दृष्टिपात करते हैं तो कथा सम्राट प्रेमचन्द के उपन्यासों तथा कहानियों में अत्यन्त प्रखरता से चित्रित भारतीय कुटुम्ब को हम देख सकते हैं। 'गोदान' उपन्यास भारतीय किसान के प्रतीक 'होरी' और 'धनिया' के कुटुम्ब की ऐसी कथा है जिसमें शोषण, अन्याय और विघटन जैसे नकारात्मक जीवन मूल्यों की तुलना में भारतीय संस्कृति के उदात्त मूल्यों को अभिव्यक्ति देकर आदर्श स्थापित किया गया है। प्रेमचन्द का 'गबन' उपन्यास तो मूलतः कुटुम्ब की ही कहानी है जहाँ प्रेमचन्द जी ने नारी की 'सहज आभूषण प्रियता' को केन्द्र में रखकर अत्यन्त रोचक कथा गढ़ी है।

कथा सम्राट प्रेमचन्द की कहानियों में भारतीय कुटुम्ब की अवधारणा इतने सशक्त और प्रेरणाप्रद रूप में अभिव्यक्त हुई है कि पाठक जहाँ करुणा के भाव से स्वयं को उद्वेलित हुआ पाता है तो वहीं आदर्श जीवन–दर्शन उसे शक्ति भी प्रदान करता है।

प्रेमचन्द की 'ईदगाह', 'अलग्योझा', 'बड़े भाई साहब' कहानियाँ और सबसे बढ़कर 'कफन' कहानी वस्तुतः मानव मन की ऐसी छवियों को प्रस्तुत करती हैं, जिनका एकमात्र आधार 'कुटुम्ब' ही है।

हिन्दी के नाटकों में भी 'कुटुम्ब' निरन्तर नाटककारों के लिए प्रेरणा का स्रोत बना है। अनेक ऐसे नाटक और एकांकी हिन्दी साहित्य में रचे गये हैं, जिनमें भारतीय संस्कृति के अनुसार 'कुटुम्ब' को आधार बनाकर सहयोग, आत्मीयता और परस्पर प्रेम जैसे जीवन–मूल्यों को संजोया गया है।

संत शिरोमणि फक्कड़ मस्त कबीर की एक साखी मैं यहाँ विशेष रूप से उद्धृत करना चाहूँगा, जिसमें मस्तमौला कबीर सीधे–सीधे भारतीय संस्कृति के अनुसार 'कुटुम्ब' के सर्वोपरि हित की चिन्ता करते हैं–

साईं इतना दीजिए, जामे कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय।।

संत कबीर की यह साखी भारतीय धर्म और संस्कृति में 'कुटुम्ब' के महत्व को भली प्रकार समझाने में सक्षम और सफल है। इसमें ईश्वर से इतना ही मांगा है, जिसमें हमारी आवश्यकताओं की सम्पूर्ति होती रहे और हम परोपकार के लक्ष्य से कभी डिगने न पायें।

हिन्दी गजलों में भी 'कुटुम्ब' अनेक गजलकारों का वर्ण्य विषय रहा है। नैतिक अवमूल्यन एवं स्वार्थपरता के कारण कुटुम्ब बिखर रहे हैं। भारतीय संस्कृति का 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आदर्श आज बिल्कुल निरर्थक सा हो गया है। आज आदमी केवल अपने तक सीमित रहना चाहता है। आज के व्यक्ति की इसी मानसिकता को माणिक वर्मा ने प्रस्तुत शेर में अभिव्यक्त किया है–

आप अपनी सरहदों में सो गया है आदमी,
चीन की दीवार जैसा हो गया है आदमी।

आज समाज में अलगाववाद की ऐसी हवा चली है कि आदमी–आदमी के बीच धर्म, जाति, भाषा एवं क्षेत्रीयता के आधार पर गहरी खाई बनती जा रही है। प्रसिद्ध गजलकार चन्द्रसेन 'विराट'

इस स्थिति में प्रेम, समरसता, भाई–चारे और सहयोग का एक सेतु बनाने की आवश्यकता पर बल दे रहे हैं–

यह विभाजन धार का, अलगाव वर्जित कर चलें,
दो तटों को जोड़ दें, वह सेतु निर्मित कर चलें।

सिंधु तक पहुँचे न पहुँचे किन्तु हम तो धार में,
एक अँजरी पुष्प श्रद्धा से समर्पित कर चलें।

गाँव के भरे–पूरे कुटुम्ब से कटकर और औद्योगिक नगरों की भीड़ में गुम होकर आदमी कितना सीमित, कितना बौना और कितना अधूरा हो गया है कि उसका समूचा संसार, स्वयं उसके कमरे की छत तक सिमटकर रह गया है। महान गजलकार डॉ0 गिरिराजशरण अग्रवाल का निम्न शेर हमें यही अनुभव कराता है–

सिमटा तो आज अपने ही कमरे की छत बना,
कल तक तो आसमान–सा फैला हुआ था मैं।

दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि आदमी और आदमी के बीच जो मानवीयता के सम्बन्ध रहे हैं और जिस तरह मनुष्य कुटुम्ब के माध्यम से एक–दूसरे से नैतिक और सामाजिक रिश्तों के साथ बँधा रहा है, वे टूट रहे हैं या ढीले पड़ रहे हैं। अलगाववाद की ओर संकेत कर रहा डॉ0 गिरिराजशरण अग्रवाल का यह शेर देखिए–

किस कदर अलगाव का खंजर कटीला हो गया,
जातियाँ बटने लगीं, घर–घर कबीला हो गया।

निराशा के इस वातावरण में भी साहित्यकार अपनी लेखनी से आशा का संचार भी करता है। भारतीय संस्कृति के 'परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम्' का संदेश देते हुए डॉ0 गिरिराजशरण अग्रवाल कहते हैं–

आज तक जीते रहे हो अपनी–अपनी जिन्दगी,
दोस्तो! इक–दूसरे की जिन्दगी बनकर जिओ।

ओस की बूँदों में ढलकर तुम अगर बिखरे तो क्या,
दूर तक बहती हुई शीतल नदी बनकर जिओ।

'कुटुम्ब' की अवधारणा के अनुरूप परस्पर सहयोग का ही सन्देश देते हुए डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल के निम्न दो शेर अत्यन्त सार्थक और प्रेरक के साथ–साथ सुन्दर बन पड़े हैं–

चलना है साथ–साथ, मचलना है साथ–साथ,
ठोकर अगर लगे तो, संभलना है साथ–साथ।

अनजान रास्ते पे अकेले नहीं चलो,
लंबा सफर है, घर से निकलना है साथ–साथ।

'कुटुम्ब' की मजबूती के लिए प्रसिद्ध हास्य और व्यंग्य कवि डॉ0 अशोक चक्रधर का यह बेहतरीन फार्मूला देखिए–

घर बनता है घरवालों से।
गर प्रेम का ईंट और गारा हो
हर नींव में भाईचारा हो
कंधों का छतों को सहारा हो
दिल खिड़की में उजियारा हो
घर गिरे नहीं भूचालों से,
घर बनता है घरवालों से।।

कवि के अनुसार यदि परिवार के सदस्यों में प्रेम और भाईचारा हो, पारस्परिक विश्वास और एकता हो, तब भूकम्प जैसे भयंकर प्रकोप से भी उनका घर नहीं गिरेगा। भले ही भूकम्प से स्थावर घर की दीवारें टूट जाती हों, परन्तु कुटुम्ब रूपी घर बनता है, परिवार के सदस्यों के प्रेम और विश्वास से। यदि यही भावना विश्व स्तर पर हो, तो सम्पूर्ण विश्व एक घर बन सकता है। भारतीय संस्कृति का मूल–मंत्र 'वसुधैव कुटुम्बकम्' भी तो यही संदेश देता है।

भारतीय साहित्यकारों ने एक ओर जहाँ आदर्श कुटुम्ब की अवधारणा को परिपुष्ट किया है, वहीं दूसरी ओर स्वार्थपरता के कारण टूटते–बिगड़ते परिवारों की वास्तविकता भी उजागर की है। लेकिन साथ ही साथ यह संदेश भी दिया है कि भौतिकता की नंगी दौड़ से बचकर एवं अलगाववाद से अपने आपको बचाकर अपने कुटुम्ब के साथ जीवन जीने में जो आत्मसन्तोष एवं सुख की प्राप्ति हो सकती है, वह अन्यत्र कदापि सम्भव नहीं है।

हिन्दी वह धागा है, जो विभिन्न मातृभाषा रूपी फूलों को पिरोकर भारत माता के लिए सुन्दर हार का सृजन करेगा।

डॉ० जाकिर हसैन